Name: **Prem Sukh**

Supervisor Name: **Prof. Abdul Bismillah**

Department of Hindi

Thesis Title: रामचरितमानस में तत्त्वमीमांसाः एक अध्ययन (शांकर केवलाद्वैत पर आधारित)

Abstract

प्रायः दर्शनशास्त्र बहुक्षेत्रीय चिंतन के लिए प्रसिद्ध है। इसके अन्तर्गत आने वाली अध्याात्मिक, सांस्कतिक, धार्मिक और सामाजिक अवधारणाएँ भारतीयदर्शन का मूलमंत्र हैं। तत्त्वमीमांसा इसी दर्शनशास्त्र की प्रमुख शाखा है, जिसमें अध्यात्म पर विचार किया जाता है। आत्मविश्लेषण द्वारा परिच्छिन्न एवं अनुभवजन्य जीव का अपरिच्छिन्न ब्रह्म में विलय इसकी विशिष्टता है।

यह शोधप्रबन्ध तत्त्वमीमांसापरक है। इसमें शंकराचार्य सम्मत तुलसी के ब्रह्म, जीव, जगत् सम्बन्धी तात्त्विक दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया है। मोक्षहेतु अज्ञान की निवृत्ति का साधन मानते हुए माया की विशिष्टताएँ भी स्वीकार की गई हैं। वेदों का तात्पर्य तत्त्वशोधन में है और कर्म तथा उपासना का प्रयोजन चित्तशुद्धि में माना गया है। शंकराचार्य ने सभी द्वैतवादी विचारधाराओं का खण्ड़न करते हुए अद्वैतवेदान्त को प्रतिष्ठित किया है। उन्होंने सिद्धांततः 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः' स्वीकार किया है। माया के कारण यह द्वैत भासित हो रहा है, इसलिए उपनिषद् का तात्पर्य तात्त्विकभेद में नहीं है। वे ब्रह्मविवर्तवाद के पोषक थे। अन्य अद्वैत विचारधाराओं से भिन्न दर्शाने के लिए उनके मत को केवलाद्वैत कहा जाता है।

रामचरितमानस अध्यात्म चिंतनपरक रचना है। इसमें परमतत्त्व का शोधन आचार–विचार, धर्म–संस्कृति, व्यवहार–परमार्थ, नीति–प्रीति आदि के द्वारा शंकराचार्य सम्मत हुआ है, जिसमें आत्मा–परमात्मा, ब्रह्म–जीव, जगत्–माया आदि आते हैं। उनकी अनेकशः आवृत्तियों को देखते हुए रामचरितमानस को शांकर केवलाद्वैती परम्परा का ग्रन्थ कहा जा सकता है। उनकी द्वैतवादी व्याख्याएँ वास्तव में चित्त को निर्मल एवं समाहित करने में उपयोगी हैं, हालांकि अन्य दृष्टियाँ भी उपयोगी हैं, परन्तु वे साध्य न होकर साधनरूप हैं। विशिष्टाद्वैत में स्वगत भेद मानकर जीव जगत् विशिष्ट ब्रह्म को माना गया है। इस मत के अनुसार ईश्वर, जीव एवं जगत् तीनों को सत्य माना गया है, परन्तु एक ब्रह्म को ही मान्यता देने के कारण रामचरितमानस में इस मत का सिद्धांततः पोषण मान्य नहीं हो सकता।

तुलसी की दृष्टि में जगत् की सत्ता को उन्होंने पारमार्थिक सत्य नहीं माना है। ब्रह्म के समान इसे सत्य कहन पर इसमें अतिव्याप्ति दोष आता है। इसके प्रत्यक्ष सिद्ध होने के

कारण इसका अपलाप भी नहीं किया जा सकता। अतः जगत् का सत्यत्व शंकराचार्य के व्यावहारिक स्तर तक ही तुलसी ने माना है। अन्ततः कालाबाधित होने से उन्होंने इसे प्रातिभासिक ही सिद्ध किया है। तुलसी ने माया के माध्यम से जगत् को ब्रह्मरूपात्मक चरितार्थ करने का प्रयास किया है, क्योंकि कोई भी आभास निरधिष्ठान नहीं होता। मायावाद की संस्तुति को देखते हुए भी रामचरितमानस को विशिष्टाद्वैती संरचना नहीं कहा जा सकता, क्योंकि रामानुज मायावाद के कट्टर विरोधी थे। तत्त्वबोध से अपवर्ग और माया द्वारा जगत् सिद्ध होता है। तदर्थ जगत् के प्रति बाधित दृष्टि क लिए मायावाद की सम्भावनाओं को रामचरितमानस में मान्यता प्रदान को गई है।

जीव की ब्रह्मरूपता को सीधे–सीधे हृदयंगम न कराकर माया के सन्निवेश द्वारा (मायाबस स्वरूप बिसरायो) तथा उसके स्वरूप की अनुभवमात्रता को– 'निज सहज अनुभव रूप' के द्वारा ही दर्शाया गया है। उसकी आनन्दरूपता का बोध (आनँद–सिन्धु–मध्य तब बासा) और जीवत्व में ब्रह्मत्व का ज्ञान (जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई) भी अभेद दर्शाने के लिए किया गया है। उसके अज्ञानकृत अंशभाव, नित्यत्वभाव तथा अनेकत्वभाव का निराकरण मिथ्यात्व के द्वारा किया गया है–मुधा भेद जद्यपि कृत माया। इन सभी विवेचनाओं के आधार पर तुलसी के जीव का तत्त्वतः नित्य, अंश, अनेक आदि नहीं कहा जा सकता।

जगत् को आविद्यिक (संसृतिमूल अविद्या), अज्ञानकृत–भ्रमरूप (जागे जथा सपन भ्रम जाई), स्वप्नवत् (जागे हानि न लाभ कछु तिमि प्रपंच), परप्रकास्य (जगत् प्रकास्य प्रकासक रामू) तथा अनिर्वचनीय (केशव कहि न जाय का कहिए) कहने में भी तुलसी का समान प्रयोजन है।

बलदेव प्रसाद मिश्र, डॉ. भगीरथ मिश्र, डॉ. रामदत्त भारद्वाज, डॉ. उदयभानुसिंह, डॉ. राजाराम रस्तोगी, डॉ. प्रेमशंकर शुक्ल आदि अधिकांश विचारक तुलसी को अंशतः केवलाद्वैतसम्मत मानते हुए भी उन्हें समग्र रूपसे समन्वयवादी मानते हैं। परन्तु सत्तात्रय विश्लेषण के द्वारा रामचरितमानस में केवलाद्वैत मत अधिक अनुकूल है।

गोस्वामीजी की रामकथा का उपजीव्य 'अध्यात्मरामायण' है, जिसका दार्शनिक आधार शंकराचार्य का केवलाद्वैत सिद्धांत है। तुलसी के व्यावहारिक दर्शन को देखते हुए उन्हें समन्वयवादी कहना या विशिष्टाद्वैत आदि सिद्धांतों से प्रभावित मानना तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता, जबकि उन्हें केवलाद्वैती मानने से इन सभी प्रतिपत्तियों का परिहार हो जाता है।

इसी भांति सालोक्य, सामोप्य आदि से अधिक अभेदात्मक मोक्ष के लिए तुलसी का आग्रह देखते हुए भी (भेदभ्रम नासा), रामचरितमानस में विशिष्टद्वैत मत को व्यावहारिक सत्ता कहा जा सकता है, साध्य नहीं। इससे सिद्धांतद्वय की कोई प्रतिपत्ति शेष नहीं रहती और शांकर–अद्वैत की केवलाद्वैती सहमति बनी रहती है।